विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/नि:शुल्क वितरण के लिए

सम्पादक

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ

1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010

फोन : 0734-2521499, 0755-2660407

Email : mvspujjain@gmail.com
vikramadityashodhpeeth@gmail.com

Web : www.mvspujjain.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-2

खगोल अध्ययन और प्राचीन भारत
यतीन्द्र तिवारी

पृष्ठ क्र. 3-4

मौर्य काल की मुद्रा और उसका चलन
विजय कुमार

पृष्ठ क्र. 5-6

विभिन्न संस्कृतियों में सौंदर्य औ आभूषण
जयप्रकाश परिहार

पृष्ठ क्र. 7

पर्यावरण संरक्षण की आदि परंपरा
श्रीमती रेखा पाण्डेय

पृष्ठ क्र. 8

महाराजा विक्रमादित्य सीनियर एवं जूनियर फैलोशिप की जानकारी

खगोल अध्ययन और प्राचीन भारत

यतीन्द्र तिवारी

विश्व का प्राचीनतम ज्ञान भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। रामायण और महाभारत काल से लेकर बारहवीं शती ईस्वी तक अनेक भारतीय विद्वानों ने विभिन्न भौगोलिक पक्षों का वर्णन अपने-अपने ग्रंथों में किया है। प्राचीन काल में भूगोल नाम का कोई अलग विषय नहीं था किन्तु धरातलीय तथा आकाशीय पिण्डों से सम्बन्धित अध्ययन क्षेत्रशास्त्र के रूप में प्रचलित था। इसीलिए भूगोल और खगोल को एक-दूसरे से सम्बद्ध माना जाता था। गणितीय भूगोल और खगोलीय भूगोल प्राचीन भूगोल के प्रमुख पक्ष थे। इसके साथ ही भौतिक तथा मानवीय तथ्यों के प्रादेशिक वर्णन भी इसके अन्तर्गत समाहित होते थे। प्राचीन भारत के प्रमुख विद्वान निम्नांकित हैं जिन्होंने अपने ग्रंथों में भूगोल के विभिन्न पक्षों की व्याख्या और वर्णन किये हैं।

भूगोल के अध्ययन में पृथ्वी की अवधारणा सबसे बुनियादी अवधारणा है। वेदों और पुराणों में 'पृथ्वी' शब्द का प्रचुर प्रयोग हुआ है। प्राचीन भारतीय साहित्य में 'भोगोल' (भूगोल) शब्द पृथ्वी के गोलाकार आकार को दर्शाता है। पृथ्वी के गोलाकार आकार की कल्पना ऐतरेय ब्राह्मण ने की थी, जिन्होंने कहा था कि सूर्य न तो अस्त होता है, न ही उदय होता है। हमें लगता है कि यह सेट है, लेकिन वास्तव में, दिन के अंत में, यह दूसरी तरफ चला जाता है। इस प्रकार यह एक ओर रात और दूसरी ओर दिन बनाता है। चंद्र ग्रहण के दौरान पृथ्वी की छाया की तरह अन्य सबूत भी हैं जो गोलाकार है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पृथ्वी गोलाकार है। भूगोल प्राचीन काल से उपयोगी विषय रहा है और आज भी यह अत्यन्त उपयोगी है। भारत, चीन और प्राचीन यूनानी-रोमन सभ्यताओं ने प्राचीन काल से ही दूसरी जगहों के वर्णन और अध्ययन में रूचि ली। भूगोल का इतिहास इस भूगोल नामक ज्ञान की शाखा में समय के साथ आये बदलावों का लेखा जोखा है। समय के सापेक्ष जो बदलाव भूगोल की विषय वस्तु, इसकी अध्ययन विधियों और इसकी विचारधारात्मक प्रकृति में हुए हैं उनका अध्ययन भूगोल का इतिहास करता है। मध्य युग में अरबों और ईरानी लोगों ने यात्रा विवरणों और वर्णनों से इसे समृद्ध किया। आधुनिक युग के प्रारंभ के साथ ही भौगोलिक खोजों का युग आया जिसमें पृथ्वी के ज्ञात भागों और उनके निवासियों के विषय में ज्ञान में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। भूगोल की विचारधारा या चिंतन में भी समय के साथ बदलाव हुए जिनका अध्ययन भूगोल के इतिहास में किया जाता है। उन्नीसवीं सदी में पर्यावरणीय निश्चयवाद, संभववाद और प्रदेशवाद से होते हुए बीसवीं सदी में मात्रात्मक क्रांति और व्यावहारिक भूगोल से होते हुए वर्तमान समय में भूगोल की चिंतनधारा आलोचनात्मक भूगोल तक पहुँच चुकी है। भारतीय योगदान भूगोल को सृष्टि तथा मानव की उत्पत्ति संबद्ध मानते हुए शुरू होता है। वैदिक काल में भूगोल से संबंधित वर्णन वैदिक रचनाओं में प्राप्त होते हैं। ब्रह्माण्ड, पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, अकाश, सूर्य, नक्षत्र तथा राशियों का विवरण वेदों, पुराणों और अन्य ग्रंथों में दिया ही गया है किंतु उन ग्रंथों में सांस्कृतिक तथा मानव भूगोल की छाया भी मिलती है। भारत में अन्य शास्त्रों के साथ-साथ ज्योतिष, ज्यामिति तथा खगोल का भी विकास हुआ था जिनकी झलक प्राचीन खंडहरों या अवशेष ग्रंथों में मिलती है। महाकाव्य काल में सामरिक, सांस्कृतिक भूगोल के विकास के संकेत मिलते हैं। प्राचीन समय में जब भूकेंद्रित ब्रह्माण्ड की संकल्पना प्रचलित थी तब पृथ्वी और आकाश को दो गोलों के रूप में कल्पित किया गया था भूगोल और खगोल। खगोल जो आकाश का प्रतिनिधित्व करता था, बड़ा गोला था और इसके केन्द्र में पृथ्वी रुपी छोटा गोला भूगोल अवस्थित माना गया। इन दोनों के वर्णनों और प्रेक्षणों के लिये संबंधित विषय बाद में भूगोल और खगोलशास्त्र थे। प्राचीन भारतीय

भूगोल धर्म पर आधारित था। धार्मिक अभिलेखों के अतिरिक्त यात्रियों द्वारा किये वर्णन विश्व के विभिन्न प्रदेशों की जानकारी के स्रोत हैं। प्राचीन भारतीय विद्धानों को ब्रह्माण्ड विज्ञान और विश्व रचना के बारे में सही जानकारी थीं। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य, भाहिला, उत्पल्ल, विजय नंदी आदि विद्वानों ने मानचित्र कला के विकास में योगदान दिया। भूगोल शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सूर्य सिद्धांत में किया गया जबकि पुराणों में भूगोल, खगोल एवं ज्योतिष चक्र के बीच अंतर स्पष्ट किया गया। प्राचीन भारतीय भागोलशास्त्रियों ने नवग्रहों सूर्य, चंद्र ,मंगल, बुद्ध, बृहस्पति ,शुक्र, शनि, राहु और केतु का वर्णन किया हैं। बुद्ध को हरे रंग का, शुक्र को सफेद, मंगल को लाल, बृहस्पति को पीला और शनि का रंग काला बताया गया हैं। प्राचीन भारतीय भी भूकेंद्रिक सिद्धांत में विश्वास रखते थे। पृथ्वी शब्द का प्रयोग वेद एवं पुराणों में कई बार किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में पृथ्वी को मंडलाकार बताया है। इसमें कहा गया है की सूर्य न तो उदय होता है और न छिपता है, यह दिन की समाप्ति पर दूसरी ओर चला जाता है जिससे रात हो जाती है। पुराणों में अक्षांशों एवं देशांतरों की जानकारी मिलती है। अक्षांशों के आधार पर पृथ्वी को अनेक प्रदेशों में विभाजित किया गया था। ऋग्वेद में पाँच ऋतुओं बसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद और हेमंत का उल्लेख मिलता है। जबकि वाल्मीकि रामायण में छह ऋतुओं का वर्णन मिलता है। यद्यपि शास्त्रीय भारतीय भौगोलिक अवधारणाओं का एक व्यवस्थित विवरण पुस्तक रूप में उपलब्ध नहीं है, फिर भी हिंदू पौराणिक कथाओं, दर्शन, महाकाव्यों, इतिहास और पवित्र कानूनों में कुछ मूल्यवान भौगोलिक जानकारी निहित है। कालानुक्रमिक रूप से, वैदिक, रामायण, महाभारत, बौद्धों और जैनियों के कार्य और पुराण प्राचीन भारतीय भौगोलिक अवधारणाओं के मुख्य स्रोत हैं। प्राचीन भारतीय विद्वानों को भारत और आसपास के देशों की स्थलाकृति, भौतिक विज्ञान, वनस्पतियों, जीवों, प्राकृतिक संसाधनों, कृषि और अन्य सामाजिक–आर्थिक गतिविधियों का सटीक ज्ञान था। उन्होंने सौर मंडल और ब्रह्माण्ड के बारे में भी अनुमान लगाया था। ऐतरेय ब्राह्मण में भारत के क्षेत्रीय भूगोल के बारे में सामग्री मिल सकती है। शतपथ ब्राह्मण भूगोल की विभिन्न शाखाओं का व्यवस्थित विवरण प्रस्तुत करता है। वैदिक युग ने भूगोलवेत्ताओं को प्रेरित किया और उन्होंने भूगोल की विभिन्न शाखाओं में बहुमूल्य कार्य किए। रामायण में, पहाड़ों, नदियों, पठारों और महत्वपूर्ण स्थानों की सूची बनाई गई है, जबकि महाभारत का महाकाव्य भौगोलिक ज्ञान के एक विश्वकोश के रूप में काम कर सकता है और भुवनकोश अन्य बातों के अलावा, जलवायु विज्ञान और मौसम विज्ञान के साथ विस्तार से व्यवहार करता है। बौद्ध जातक प्राचीन भूगोल का काफी अच्छा ज्ञान प्रस्तुत करते हैं। 'भुगोला' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सूर्यसिद्धान्त में हुआ है। लेखक पृथ्वी की सतह की अवधारणा, पूर्वजों के लिए ज्ञात शब्द, भारतवर्ष और उसकी भूमि और लोगों और गाँव और नगर नियोजन के बारे में पूर्वजों की अवधारणा को परिभाषित करने में सफल रहा है। प्राचीन भारतीय भूगोल धर्म पर टिका है। प्रत्येक भौतिक घटना, पृथ्वी की सतह पर प्रत्येक प्रमुख या शानदार मील का पत्थर भारतीयों के लिए एक धार्मिक पृष्ठभूमि है। हर पर्वत शिखर, हर नदी, हर चट्टान, हर विशाल और उपयोगी पेड़ पवित्र है और इन परंपराओं में संरक्षित है। धार्मिक अभिलेखों के अतिरिक्त विश्व के विभिन्न प्रदेशों के वर्णन में यात्रियों, वृतांतों (धार्मिक, वाणिज्यिक, अभियान) की भरमार है। इन यात्रियों के वृत्तांतों से पता चलता है कि भारत के पड़ोसी देशों के साथ घनिष्ठ संबंध थे और भारतीय विद्वान चीन, दक्षिण–पूर्व एशिया, मध्य एशिया, मेसोपोटामिया और ट्रांस–ऑक्सस एशिया की भौगोलिक स्थितियों से परिचित थे। ऋग्वेद में कई देवताओं का उल्लेख है जिन्होंने सृष्टि की प्रक्रिया के दौरान विभिन्न कार्य किए। ये देवता कलाकार थे जिन्होंने ब्रह्माण्ड के निर्माण और पूर्णता में अपने कौशल का योगदान दिया। उन्होंने विभिन्न सामग्रियों को एक पैटर्न में पिरोया और विस्फोट तथा प्रगलन द्वारा ब्रह्माण्ड को आकार दिया। ब्रह्माण्ड की तुलना एक घर से की गई थी और ऋग्वेद इस सार्वभौमिक घर के निर्माण के विभिन्न चरणों का संकेत देता है। ऋग्वेद काल के अंतिम चरण में ब्रह्माण्ड की यांत्रिक उत्पत्ति के बारे में विचार विकसित हुए। यह आदि–पुरुष के रूप में पहचाने जाने वाले आदिम शरीर के बलिदान (या विघटन) का सुझाव देता है, जिसे आत्मा और ब्रह्माण्ड के केंद्र और सर्वोच्च आत्मा के अवतार के रूप में माना जाता है।

मौर्यकाल की मुद्रा और उसका चलन

विजय कुमार

मौर्यकालीन सिक्कों की जानकारी अर्थशास्त्र से होती है। इस समय चाँदी सिक्का शुद्ध चाँदी का नहीं होता था। इसमें कुछ अंश ताँबे और लोहे इत्यादि की भी मिलावट होती थी। चाँदी के वास्तविक सिक्के 'पण' कहे जाते थे। 'पण' आधा, 1X4 और 1X8 (अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी) भाग का होता था। सम्भवतः पण का 1X16 एकन्नी भाग भी होता था। मौर्यकाल में बड़े सिक्कों को तोड़कर उनके टुकड़ों को छोटे सिक्कों का मूल्य दिया जा सकता था। रजत सिक्के का वजन 1 कर्ष होने के कारण इसे कर्षापण भी कहते थे। मौर्यकाल तक ताँबे के सिक्के पूर्णतः व्यवहार में आ गए थे। चाँदी के सिक्कों के समान ताँबे के सिक्कों में भी अन्य धातुओं की कुछ मिलावट होती थी। कौटिल्य इसे मासक और काकिणि की संज्ञा देते है।

कौटिल्य के समय सम्भवतः एक और प्रकार के सिक्के प्रचलित थे जो शीशा नामक धातु के बने होते थे। इसलिए इन्हें शीशारूप कहा गया है। सिक्कों की शुद्धता और उत्तमता पर प्रकाश डालते हुए कौटिल्य एक ऐसे अधिकारी का वर्णन करता है जिसका कर्तव्य यही था कि पुराने सिक्कों का मूल्य निर्धारित करे और जाली सिक्कों को पहचाने। इस अधिकारी को 'रूपदर्शक' कहते थे जिसका कर्तव्य था कि खराब सिक्कों को नष्ट कर दे। अतएव कौटिल्य ने मुद्रा की उत्तमता पर विशेष ध्यान दिया। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि सिक्कों की संख्या पर कोई विशेष राजकीय नियंत्रण नहीं था। केवल इतना ही था कि जो भी सिक्के बनें वे राजकीय टकसाल से ही निकलें। जिससे राज्य को इस बात का ज्ञान रहे कि कुल सिक्कें कितने प्रचलित हैं। कोई भी व्यक्ति जिसके पास कच्ची चाँदी रहती थी राजकीय सोनार के पास सिक्का बनवा सकता था। सिक्कों को बनाने का कुछ खर्च बनवाने वाले को सहना पड़ता था। अर्थशास्त्र से ऐसा ज्ञात होता है कि आम तौर पर सिक्के जो प्रचलित होते उन्हें व्यावहारिका कहा जाता था, लेकिन कुछ सिक्के ऐसे भी होते जो राजकीय खर्च के लिए रखे जाते थे। कौटिल्य निजी तौर पर उत्पादन को मान्यता देते है, लेकिन सिक्के बनाने के सभी राजकीय जहाँ तक कुषाणकालीन सिक्कों के ऐतिहासिक महत्व का प्रश्न है प्रान्त से प्राप्त सिक्कों से पता चलता है कि कुषाणों का इस क्षेत्र पर अधिकार था। ये सिक्के अन्तिम यूनानी राजा हरमियस के हैं। इन पर एक और राजा हरमियस का नाम खुदा है और दूसरी ओर खरोष्ठी भाषा में कुल का नाम अंकित है। ताँबे के इन सिक्कों से पता चलता है कि प्रथम शासक कुजुलकडफिसीस ने अन्तिम यूनानी राजा हरमियस के साथ मिलकर शासन किया। कनिंघम का विचार है कि कुजुलकडफिसीस ने हरमियस को हरा दिया था। हरमियस के सिक्कों से पता चलता है कि ई.पू. 40 के आसपास वह काबुल का शासक था जब कि कुजुलकडफिसीस 52 ई. के आसपास इस क्षेत्र का शासक था। यहाँ पाए गए छह सिक्कें गोल और ताँबे के बने हैं। इनमें से दो सिक्कों के मुख भाग पर दाहिनी ओर हरमियस राजा का आधा चित्र अंकित है और पीछे भाग पर हेराक्लीज की मूर्ति। दो सिक्कों के मुख भाग पर हरमियस राजा का आधा चित्र बना और पृष्ठ भाग पर हेराक्लीज की मूर्ति अंकित है। शेष के अग्र भाग पर भी इसी तरह के चित्र बने हैं और पिछले भाग पर विजया देवी की मूर्ति अंकित है। इसी प्रकार का एक सिक्का कुषाण सरदार माठरा के द्वारा चलाया गया था। कुषाण शासक कुजुलकडफिसीस के काल का चाँदी का एक सिक्का तक्षशिला से प्राप्त हुआ है जिसके मुख भाग पर इस शासक का आधा चित्र बना है और पृष्ठभाग पर विजया देवीजी की मूर्ति है। ये सिक्के काबुल की घाटी में बनाए गए थे। इस काल के लगभग ढाई हजार ऐसे सिक्के तक्षशिला में मिले हैं। कुषाणकालीन कुछ अन्य सिक्कों के अग्रभाग पर कुषाण राजा कुजुलकडफिसीस का मुकुट के साथ सिर का चित्र देखने को मिलता है। पीछे के भाग पर यह शासक किसी अस्पष्ट वस्तु पर बैठा है। अगस्टस के रोमन सिक्कों के जैसे ये सिक्के हैं। इन सिक्कों के आधार पर कहा जा सकता कि कडफिसीस प्रथम शताब्दी के प्रारम्भ में शासन कर रहा था। कुछ अन्य सिक्कों के मुख भाग पर बैल की आकृति है जिसके आधार पर विद्वानों का कहना है कि कुजुलकडफिसीस से अलग एक अन्य राजा जिसका नाम कुजुलकरकप था, पुष्कलावती की राजधानी छत्रप जीयोनिस पर विजय पाई थी। कनिंघम ने उत्तराधिकारी कुजुलकरकप बताया है जिसने को कुजुलकडफिसीस का सबसे बड़ा पुर अपने पिता के जीवन–काल में यह सिक्का प्रचलित करवाया था। इस काल के कुछ अन्य सिक्कों के मुख्य भाग पर राजा को वस्त्रयुक्त रूप में बैठे दिखाया गया है और खरोष्ठी में कुजुलकडफिसीस (कसम) कुषणस लिखा हुआ है। ऐसे सिक्के संख्या में 78 हैं। कुजुलकडफिसीस प्रथम कुषाण राजवंश का संस्थापक था। 80 वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हुई थी। वह

बौद्ध था। उसका उत्तराधिकारी वीमकडफिसीस द्वितीय ने सोने का सिक्का सबसे पहले चलाया। कडफिसीस द्वितीय (वीमकडफिसीस) ने रोमन सिक्के की तौल 124 ग्रेन के समान सिक्के चलाए जिन पर शिव मूर्ति तथा कहीं–कहीं पर महीश्वर पदवी भी खुदी मिली है जिसके आधार पर विद्वानों ने इस शासक को शैव मत का माना है। इस शासक के सिक्कों के अग्र भाग पर राजा को देवता के रूप में दिखाया गया है। इस काल के कुछ सिक्कों के अग्र भाग पर राजा का सिर चौकोर ढाँचों से युक्त दिखाया गया है। इसके काल के कुछ रजत सिक्के भी मिले हैं, जिनके मुख भाग पर राजा ऊँची टोपी, बटनदार नुकीला कोट, बटनवाला पाजामा पहने हुए और दाएँ हाथ में ध्वज लेकर दाहिने हाथ से वेदी पर आहुति दे रहा है। 16 इस काल के ताम्र सिक्के तीन आकार–लम्बे, मध्य और छोटे आकार के हैं। लम्बे आकार के सिक्के 270 ग्रेन के हैं। 128 ग्रेन के मध्य आकार के सिक्के मिले हैं। छोटे आकार अर्थात् तीसरे प्रकार के सिक्कों का वजन 60 ग्रेन है। इन सिक्कों से पता चलता है कि विमकडफिसीस शैव धर्म का उपासक था। इसने सोने, चाँदी और ताँबे के सिक्कों को चलाया। कुछ अन्य सिक्के पंजाब, कान्धार और काबुल की घाटी में मिले हैं जिनसे कुषाण साम्राज्य–विस्तार की जानकारी तो होती है लेकिन राजा का नाम नहीं। इन सिक्कों पर अश्वारोही के चिह्न बने हैं और यूनानी तथा खरोष्ठी में कुछ लिखा हुआ है। बिना नाम के कुछ अन्य ताम्र सिक्के मिले हैं जिनके पृष्ठ भाग पर राजा मुकुट धारण किए घोड़े पर बैठा है। शक संवत् (78 ई.) को चलानेवाला कनिष्क कुषाणकाल का सबसे प्रतापी और प्रसिद्ध शासक माना गया है। इसके काल के बड़े पैमाने पर स्वर्ण सिक्के पाए गए हैं जिनके अग्र भाग पर सिरस्त्राण, मुकुट, ईरानी ढंग का लम्बा कोट, पाजामा, टोपी और जूता पहने हुए राजा बाई ओर खड़ा है और दाहिने मूर्ति, बाएँ हाथ में भाला पकड़े हुए है। ग्रीक भाषा इन सिक्कों पर कनिष्क का नाम खुदा है। इस काल के सिक्कों को विद्वानों ने सलेने, मनोबगो, मओ, हिफेस्टस, अवासो, अरदोक्षो लुहस्प, बोछो, माओ, महिरि, नन, ओइशो,ओरलग्नो, फरों, मजदहनो कहा है। इस शासक के ताम्र सिक्के पंजाब, उत्तर प्रदेश और कुछ बिहार में मिले हैं जो रोमन सिक्कों के बराबर हैं। इन सिक्कों का प्रयोग स्थानीय व्यापार के लिए होता था। ताँबे के इन सिक्कों पर स्वर्ण सिक्कों के समान चिह्न बने हुए हैं। कनिष्क के उत्तराधिकारी हुविष्क ने चाँदी, सोना और ताँबे के सिक्के चलाए जिन पर ईरानी पत्नी सहित राजा का नाम मुख भाग पर और पृष्ठ भाग पर विभिन्न देवताओं की आकृतियाँ खुदी हैं। हुविष्क के रजत सिक्के 32 ग्रेन के हैं। हुविष्क के बाद कुषाण वंश का शासक वासुदेव था जिसके काल के गोल सिक्कों पर पाए गए चित्रों से पता चलता है कि ईरानी देवी–देवताओं और बौद्ध धर्म का पतन हो गया था। इसके साथ ही शैव धर्म ने प्रमुखता पा ली थी। वासुदेव के सिक्के सोने और ताँबे के बने हैं जिनका वजन कनिष्क और हुविष्क के समान है जो पंजाब और उत्तरी पश्चिम भारत में पाए गए हैं। स्वर्ण सिक्के पेशावर में मिले हैं। वासुदेव के बाद कुषाण साम्राज्य कई भागों में बँट गया। वासुदेव के बाद कुछ वैसे सिक्के पाए गए हैं जिन पर कनिष्क और वासुदेव दोनों के नाम अंकित हैं। इस आधार पर कहा जाता है कि ये सिक्के वासुदेव द्वितीय, कनिष्क तृतीय तथा वासुदेव तृतीय के होंगे, जिन्होंने अफगानिस्तान, सीस्तान अथवा भारत के उत्तर–पश्चिम भाग में नाममात्र का शासन किया था। इन राजाओं की प्रामाणिकता लेखों तथा सिक्कों से सिद्ध होती है। सीस्तान, पंजाब तथा अफगानिस्तान में एक प्रकार के सिक्के मिले हैं जिन पर राजा के बाईं ओर ब्राह्मी अक्षरों में श्वसुश लिखा है। इसके अतिरिक्त दोनों पैरों के बीच कुछ ब्राह्मी अक्षर दिखाई पड़ते हैं। मुद्राशास्त्र विज्ञ इन सिक्कों को द्वितीय वासुदेव का मानते हैं जो वासुदेव प्रथम के बाद शासक हुआ। विद्वानों का अनुमान है कि द्वितीय वासुदेव ने द्वितीय कनिष्क की अधीनता स्वीकार कर ली थी। आरा अभिलेख से विदित होता है कि कनिष्क द्वितीय वासिष्क का पुत्र था जो कनिष्क संवत् 41 वर्ष में शासन कर रहा था। इस राजा के सिक्के बहुलता से मिलते हैं जिससे ज्ञात होता है कि कनिष्क द्वितीय का राज्य अधिक समय तक रहा। कश्मीर से सीस्तान के विस्तृत क्षेत्र में इसके सिक्के मिले हैं। डेढ़ इंच आकार में स्वर्ण सिक्का कनिष्क तृतीय का मिला है। इसके अलावा बाद के अनेक छोटे–छोटे कुषाण शासकों के काल के सिक्के मिले हैं। इस काल के स्वर्ण सिक्के अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में प्रयोग किए गए। कुषाण मुद्राओं से ऐतिहासिक तिथियाँ निर्धारित करने में सुविधा मिलती है। धार्मिक दृष्टिकोण से पता चलता है कि विदेशियों ने भारतीय धर्म और संस्कृति को स्वीकारा। इस काल में धार्मिक इतिहास को व्यक्त करने के रूप में कनिष्क तथा हुविष्क के सिक्कों का पर्याप्त महत्व है। इसमें उल्लेखनीय चयनात्मकता लक्षित होती है, क्योंकि इनके पृष्ठ भाग पर यूनानी तथा शुक्रदेवता, अतस्ता तथा वेद का देवता और बुद्ध के चित्र हैं। हुविष्क ने कार्तिकेय की मुद्राओं को विभिन्न नामों से अंकित करवाया। जिन–जिन उपलब्धियों के कारण गुप्त काल, भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग (वैसे इस काल को स्वर्ण युग कहना उचित नहीं है) माना जाता रहा है, उनमें से एक उपलब्धि है सिक्का। मुद्रा का प्रचलन गुप्तकाल में चन्द्रगुप्त ने किया। इसके काल के सिक्के मथुरा, टाँडा, गाजीपुर, अयोध्या, बनारस तथा भरतपुर स्टेट के बयाना फोर्ड में मिले हैं। सिक्कों का वजन 120 ग्रेन है। मिलावट की मात्रा भी बाद के गुप्त शासकों की तुलना में कम है। चन्द्रगुप्तकालीन सिक्कों के अग्रभाग में राजा–रानी आमने–सामने खड़े हैं। दोनों मूल्यवान वस्त्रों तथा आभूषणों से सजे हैं। राजा के बाएँ हाथ में ध्वज है और दाहिने हाथ से रानी को कुछ भेंट कर रहा है। यह उपहार किसी मुद्रा में अँगूठी, किसी में सिन्दूरदानी और किसी में अन्य आभूषण के रूप में है। रानी का दाहिना हाथ कमर पर और बायाँ नीचे लटका है। मुद्रा पर बाईं ओर चन्द्रगुप्त और दाईं ओर श्रीकुमार देवी या कुमार देवीश्री लिखा है।

विभिन्न संस्कृतियों में सौंदर्य और आभूषण

जयप्रकाश परिहार

विभिन्न संस्कृतियों के बीच कई अलग–अलग उपयोगों के साथ, आभूषणों का इतिहास लंबा है। यह हजारों वर्षों से कायम है और इसने विभिन्न अंतर्दृष्टि प्रदान की है कि प्राचीन संस्कृतियों ने कैसे काम किया। माना जाता है कि सबसे पहले ज्ञात आभूषण वास्तव में मनुष्यों (होमो सेपियन्स) द्वारा नहीं बल्कि यूरोप में रहने वाले निएंडरथल द्वारा बनाए गए थे। लगभग सात हजार साल पहले ताँबे के आभूषणों का पहला चिन्ह देखा गया था। विश्व की अनेक प्रसिद्ध सभ्यताओं से संबंधित उत्खनन में बहुत बड़ी संख्या में आभूषणों के अवशेष प्राप्त होते रहे हैं। सिन्धु घाटी सभ्यता इस बात का सबसे अच्छा और प्रसिद्ध उदाहरण है। सिन्धु घाटी सभ्यता में लोगों का सौंदर्य बोध, जटिल अभियांत्रिकी कौशल और विशेषज्ञता अच्छी तरह विकसित हो चुकी थी। प्रौद्योगिकी कुशलता से भी बढ़कर, अचंभित करने वाली एक चीज है देश के अलग–अलग हिस्सों में आकल्पन की अविच्छिन्नता। राजस्थानी बोरला नामक आभूषण की उत्पत्ति सिन्धु घाटी के उस आभूषण से हुयी जिसे ललाट पर धारण किया जाता था और स्वर्ण फलक से बना होता था। यह आभूषण प्राचीन मूर्तियों में से एक, दीदारगंज यक्षिणी के ललाट पर दिखाई देता है।

हिंदू मान्यता के अनुसार सोने और चाँदी को पवित्र धातु माना जाता है। सोना गर्म सूर्य का प्रतीक है, जबकि चाँदी शीतल चंद्रमा का प्रतीक है। दोनों भारतीय आभूषणों की सर्वोत्कृष्ट धातुएँ हैं। शुद्ध सोना समय के साथ ऑक्सीकरण या क्षरण नहीं करता है, यही वजह है कि हिंदू परंपरा सोने को अमरता से जोड़ती है। प्राचीन भारतीय साहित्य में सोने की कल्पना अक्सर होती है। ब्रह्माण्ड संबंधी सृष्टि के वैदिक हिंदू विश्वास में, भौतिक और आध्यात्मिक मानव जीवन का स्रोत एक स्वर्ण गर्भ (हिरण्यगर्भ) या अंडे (हिरणानंद) से उत्पन्न हुआ और विकसित हुआ, जो सूर्य का एक रूपक है, जिसका प्रकाश आदिम जल से उगता है। मोहन जोदड़ो के पतन के बाद, भारतीय आभूषण और अधिक कोमल एवं जटिल हो गयी। संगम काल के तमिल साहित्य के पाँच महान ग्रंथों में से एक, सिलाप्पदिकरम में एक समाज का आख्यान है जो स्वर्ण, कीमती रत्नों और मोतियों का कारोबार करता था।

एक पुर्तगाली यात्री ने अपने वृत्तान्त में विजयनगर साम्राज्य में लोगों द्वारा पहने जाने वाले सम्मोहक आभूषणों का विस्तृत विवरण दिया है। माणिक और पन्ना जड़ित ये जटिल, सुघड़ आभूषण पहले केवल मंदिरों में मूर्तियों को सजाने के लिए बनाए जाते थे। किन्तु समय के साथ जब भरतनाट्यम का व्यापक प्रसार हुआ, तब मंदिरों के इन आभूषणों को नर्तक भी ध ारण करने लगे और कालक्रम में यह आम लोगों के लिए भी प्रचलित हो गया। कला के प्रति मानव का अनुराग सहज और स्वाभाविक रहा है। वह अपने परिवेश तथा देह को सुन्दर और सजाकर रखना चाहता है। जब विभिन्न प्रकार के अलंकरणों, रत्नादि से वह अपने शरीर को सौन्दर्य प्रदान करता है, तब उसे 'वैयक्तिक श्रृंगार' की संज्ञा दी जाती है। इस श्रृंगार में चार प्रमुख अंग क्रमशः प्रसाधन, वस्त्र, केश विन्यास और रत्नजड़ित आभूषण होते हैं। प्रस्तुत पुराप्रसंग में रत्नाभूषण का प्राचीन विवरण है जो हमारे देश की पुरातात्विक मूर्तिकला में अतीत से अब तक उत्खनन में मिला है। डॉ. मोतीचंद्र ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारतीय वेशभूषा' में प्राचीनकाल के स्त्री–पुरुषों के परिधानों और अलंकारों का प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत किया है।

अजंता के भित्ति चित्रों, एलोरा, खजुराहो, कोणार्क, साँची, भरहुत और कलचुरी की मूर्तियों तथा प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के अध्ययन से पता चलता है कि प्राचीनकाल के स्त्री–पुरुषों के मन में अपने शारीरिक सौंदर्य और आभूषणों के लिए अत्यधिक ललक थी। वाल्मीकि रामायण में वनगमन के समय श्रीराम तो अपना शिरोभूषण 'मौलि–मणि' उतारकर जटा–जूट बाँध लेते हैं, लेकिन सीताजी अपने गहने नहीं उतारतीं। गंगाजी पार करने के बाद वे एक मुद्रिका तो केवट को दे देती हैं और रावण द्वारा अपहरण किए जाने पर अपने शेष आभूषण किष्किंधा के समीप गिरा देती हैं। उन आभूषणों को देखकर लक्ष्मण कहते हैं–

'नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरं त्वभि जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।'

(मैं उनके बाजूबंदों को नहीं पहचानता, न ही उनके कुंडलों को पहचानता हूँ। हाँ, नित्य प्रति उनके चरणों की वंदना करने के कारण उनके नूपुरों को पहचानता हूँ।)

महाभारत के वनपर्व के 233वें अध्याय में सत्यभामा को दिए गए उपदेश में द्रौपदी कहती हैं– महाराज युधिष्ठिर की जो दासियाँ थीं, वे हाथों में शंख की चूड़ियाँ, भुजाओं में बाजूबंद और कंठ में सुवर्ण का हार पहनकर बड़ी सज–धज के साथ रहती थीं। उनकी मालाएँ एवं आभूषण बहुमूल्य थे। उनकी अंगकांति बहुत सुंदर थी। वे चंदन मिश्रित जल से स्नान करती थीं तथा मणि व सुवर्ण के गहने पहना करती थीं।

गुप्तकाल से मंदिर शिल्प योजना में भित्तियों में प्रतिमा शिल्प का प्रयोग दिखाई देता है। इसके पश्चात् के काल में प्रतिमा शिल्प के अलंकरण में भिन्नता स्पष्ट दिखाई देती है। वस्त्रों के छापे, पहने का ढंग एवं आभूषणों की बनावट भी पृथक दिखाई देती है। इन प्रतिमाओं में हम देखते हैं कि पुरुष सौंदर्य की वृद्धि के लिए केश विन्यास, वस्त्र, माला, बाजूबंद पहने दिखाई देते हैं। जबकि स्त्रियों के आभूषण अलग दिखाई देते हैं। जिस तरह वर्तमान काल में वस्त्रों एवं आभूषणों में बदलाव फैशन के आधार पर होता है उसी तरह प्राचीन काल में बदलाव दिखाई देता है।

आभूषणों का महत्व सौंदर्य वृद्धि के साथ धार्मिक भी है, जिस प्रकार विवाहित स्त्रियाँ बेन्दा (टीका) धारण करती हैं, कुछ स्थानों पर मंगलसूत्र विवाहित एवं सौभाग्य का सूचक माना गया है। इसी तरह पुरुष भी ताबीज इत्यादि धारण करते थे। उत्खनन के दौराण अर्ध मूल्यवान रत्न अधिक प्राप्त होते हैं, जिनका आभूषणों में प्रयोग किया जाता था। स्वर्ण एवं रजत के आभूषणों में पत्थर भी जड़े जाते थे, जिन्हें रत्न कहा जाता है। गोमेद, जम्बुमणि, स्फटिक, सेलखड़ी, हाथी दाँत, शीशा आदि जड़े जाते थे। इसके अतिरिक्त मिट्टी के मनके भी धारण किए जाते थे। आभूषणों से स्वतः को सजाने की परंपरा आधुनिक काल में और मजबूत हुई है। बड़े धैर्य के साथ मनमोहक और बारीक काम वाले गहने तैयार करने की कला भारत के इतिहास का एक भाग है। कलाकारों–कारीगरों को मिलने वाले राजाश्रय के कारण इन गहनों की सुंदरता को और बढ़ाने में मदद मिली है। प्राचीन समय में लोग कई कलाओं में महारथ हासिल कर चुके थे, जिनमें आभूषण बनाना भी शामिल था। वहीं, धातुओं के विकास के साथ ही इनका इस्तेमाल विभिन्न प्रकार की आभूषणों को बनाने में किया जाने लगा था।

आभूषण लोक संस्कृति के लोकमान्य अंग हैं। सौंदर्य की बाहरी चमक–दमक से लेकर शील की भीतरी गुणवत्ता तक और व्यक्ति की वैयक्तिक रुचि से लेकर समाज की सांस्कृतिक चेतना तक आभूषणों का प्रभाव व्याप्त रहा है। आभूषणों के उपयोग का प्रभाव तन और मन, दोनों पर पड़ता है। उनके धारण करने से शरीर का सौंदर्य ही नहीं प्रकाशित होता, वरन् स्वास्थ्य भी सुरक्षित रहता था। सौंदर्य–बोध में उचित समय पर उचित आभूषण पहनने का ज्ञान सम्मिलित है।

देवगढ़ (ललितपुर) के विष्णु मंदिर (गुप्तकालीन) में मानवी और दैवी स्त्री–पुरुष आभूषण पहने उत्कीर्ण हुए हैं। कानों में कुण्डल या कर्णफूल, गले में चंद्रहार या एकावली, भुजाओं में भुजबंद या अनन्तवलय, कलाइयों में कंगन, हाथ की अंगुलियों में मुँदरी और कटि में मेखला या कटिसूत्र–स्त्री–पुरुष और देवी–देवता के स्तर के अनुरुप बनक (डिजाइन) में पहने जाते थे। हाथ की अँगुलियों के आभूषण प्रागैतिहासिक काल से अब तक चले आ रहे हैं। आदिवासी गौंड, कोंदर, कौंर आदि सभी अँगुलियों का श्रृंगार करते थे। गोंड स्त्री और पुरुष, दोनों को अँगूठी पहनने का सबसे अधिक चाव है। वैदिक काल में अंगूठी को हिरण्यपाणि कहा जाता था भरहुत की मूर्तियों में अँगूठियाँ का अंकन मिलता है। चंदेलकालीन नाटककार वत्सराज केर रुपक 'कर्पूरचरित' में अंगुलीयक (अँगूठी) का उल्लेख है। मध्यकाल के आचार्य कवि शव से लेकर आधुनिक लोककवि भुजबल तक अनेक कवियों की रचनाओं में मुँदरी का वर्णन आया है, जिससे उसकी लोकप्रियता की बानगी मिलती है। कला के प्रति मानव का अनुराग सहज और स्वाभाविक रहा है। वह अपने परिवेश तथा देह को सुन्दर और सजाकर रखना चाहता है। जब विभिन्न प्रकार के अलंकरणों, रत्नादि से वह अपने शरीर को सौन्दर्य प्रदान करता है, तब उसे 'वैयक्तिक श्रृंगार' की संज्ञा दी जाती है।

इस श्रृंगार में चार प्रमुख अंग क्रमशः प्रसाधन, वस्त्र, केश विन्यास और रत्नजड़ित आभूषण होते हैं। प्रस्तुत पुराप्रसंग में रत्नाभूषण का प्राचीन विवरण है जो हमारे देश की पुरातात्त्विक मूर्तिकला में अतीत से अब तक उत्खनन में मिला है। गुप्तकालीन पुरातत्वकला में तत्कालीन लोग रत्न और मणिमुक्ता युक्त स्वणाभूषण धारण करते थे। महाकवि कालिदास ने अपने ग्रन्थ मेघदूतम्, रघुवंशम्, ऋतुसंहार, कुमारसम्भव में स्पष्ट रूप से रत्नों के पृथक–पृथक नामों यथा वैदूर्यमणि, नीलमणि, महानील, पद्यराग, मूंगा, मकरत, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, सितामणि (हीरा) का उल्लेख किया है। इसमें इन्द्रनील और महानील नीलम रत्न के दो प्रकार के होते थे। गुप्तकालीन मूर्तिकला के शिरोभूषण में रतन रूप में चूड़ामणि, शिखामणि आदि प्रमुख थे। पौराणिक कथानुसार सागर मंथन की कथा सर्वज्ञात है, जिसका पुरातत्त्व मूर्तिकला में भी अंकन हुआ है। विभिन्न पुराणों में समुद्र मंथन से प्राप्त चौदह रत्नों का उल्लेख मिलता है, जिनमें कोस्तुभमणि नामक रत्न भगवान् विष्णु द्वारा धारण किए जाने का प्रसंग मिलता है। उज्जैन के विक्रम कीर्ति मन्दिर संग्रहालय में शेषशायी माला के साथ कौस्तुभमणि का भी स्पष्ट अंकन है। यह अंकन विष्णु के वक्षस्थल पर सुशोभित है। प्रतिहार शासकों के काल में ऐसी कई मूर्तियों का निर्माण हुआ है, जिनमें विष्णु के वक्ष पर 'कौस्तुभमणि' का अंकन हुआ है। इस प्रकार प्राचीन पुरातत्व के कला संसार में रत्नों आभूषणों के विभिन्न रूपों का सुन्दर अंकन हुआ है जिनसे इनकी प्राचीन महत्ता का बोध होता है।

पर्यावरण संरक्षण की आदि परंपरा

श्रीमती रेखा पाण्डेय

प्रकृति और मानव का अटूट संबंध सृष्टि के निर्माण के साथ ही चला आ रहा है। धरती सदैव ही समस्त जीव–जन्तुओं का भरण–पोषण करने वाली रही है। 'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा, पंच रचित अति अधम सरीरा।' इन पाँच तत्वों से सृष्टि की संरचना हुई है। बिना प्रकृति के जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। भौतिक युग में जहाँ विकास के नाम पर मानव ने प्रकृति के सुंदर स्वरूप को क्षति पहुँचा पर्यावरण को ही चुनौती देकर अपने जीवन को ही संकट में डाल दिया है। भारत में प्रत्येक भाषा–साहित्य में प्रकृति से जुड़े प्रत्येक तत्वों का बड़ी सूक्ष्मता और सुंदरता के साथ वर्णित करते हुए, उसे देवतुल्य मानकर उसकी उपासना की गई है। यहाँ पंच महाभूत अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश के साथ ग्रह–नक्षत्र, नदियां, तालाबों, पर्वत, पेड़–पौधों, जीव–जंतुओं सभी में ईश्वरीय सत्ता को स्वीकारते हुए उनके प्रति आदर–सम्मान की भावना परिलक्षित होती है। भारतीय परंपराओं में पर्यावरण अभिन्न अंग रहा है। प्रत्येक परम्पराओं के पीछे एक वैज्ञानिक तथ्य जुड़ा है। वेदों को सृष्टि विज्ञान का प्रमुख ग्रंथ माना गया है।

वेदों में पर्यावरण संतुलन के महत्व को प्रतिपादित करते हुए जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी का स्तवन अनेक स्थलों में किया गया है। अग्नि को पिता के समान कल्याणकारी कहा गया है। 'अग्ने। सूनवे पिता इव नः स्वस्तये आ सचस्व' ऋग्वेद का प्रथम मंत्र ही अग्नि तत्व के स्तवन से होता है। वैसे पर्यावरण शब्द कोई प्राचीन शब्द नहीं है, अंग्रेजी में इसके लिए इन्वायरमेंट शब्द का प्रयोग किया जाता है। इनवायरमेंट शब्द भी अधिक प्राचीन नहीं है। जर्मन जीव विज्ञानी अर्नेस्ट हीकल द्वारा इकॉलॉजी शब्द का प्रयोग 1869 में किया गया, जो ग्रीक भाषा के ओइकोस (गृह या वासस्थान) शब्द से उद्धृत है। यह शब्द पारिस्थितिकि के अंग्रेजी पर्याय के रुप में प्रचलित हुआ है। सर्व प्रथम डॉ. रघुवीर ने तकनीकि शब्द निर्माण के समय इन्वायरमेंट (फ्रेंच भौतिकी शब्द) के लिए पर्यावरण शब्द का प्रयोग किया है, वे ही इस शब्द के प्रथम प्रयोक्ता है।

इससे पूर्व प्राचीन साहित्य में परिधि, परिभू, परिवेश, मण्डल इत्यादि शब्दों का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद(1.23.248) में जल के महत्व को इस प्रकार बताया गया है –'अप्सु अन्तःअमृतं, अप्सु भेषजं' अर्थात जल में अमृत है,जल में औषधि गुण विद्यमान रहते हैं अस्तु, आवश्यकता है जल की शुद्धता, स्वच्छता बनाये रखने की। ऋग्वेद (1,555,1976) के ऋषि का आशीर्वादात्मक उद्‌गार है। 'पृथ्वीःपूःच उर्वी भव –अर्थात समग्र पृथ्वी संपूर्ण परिवेश परिशुद्ध रहे, नदी, पर्वत, वन, उपवन सब स्वच्छ रहें, गाँव, नगर सबको विस्तृत और उत्तम परिसर प्राप्त हों तभी जीवन का सम्यक विकास हो सकेगा। यजुर्वेद में यज्ञ विधियाँ एवं यज्ञ में प्रयोग किये जाने वाले मंत्र हैं। यज्ञ स्वयं

एक चिकित्सा है। यज्ञ वायु मंडल को शुद्ध कर रोगों और महामारियों को दूर करता है। अथर्ववेद में आयुर्वेद का अत्यंत महत्व है। अनेक प्रकार की चिकित्सा पद्धति एवं जड़ी बूटियाँ तथा शल्य चिकित्सा व विभिन्न रोगों का वर्णन है। सामवेद में ऐसे मंत्र मिलते है जिनसे ये प्रमाणित होता है कि वैदिक ऋषियों को ऐसे वैज्ञानिक सत्यों का ज्ञान था जिनकी जानकारी आधुनिक वैज्ञानिकों को सहस्राब्दियों बाद प्राप्त हो सकी।

वेदों के पश्चात् रामायण और रामचरित मानस की बात करें तो महर्षि वाल्मीकि एवं तुलसीदास ने मनुष्य के जीवन को सात्विक और सुंदर बनाने के लिए प्राकृतिक पर्यावरण की विशुद्धता पर विशेष बल दिया है तभी मानव जीवन आनंदकारी हो सकेगा। इन्होंने प्राकृतिक अवयवों को उपभोग की वस्तु नहीं मानते हुए समस्त जीवों और वनस्पतियों के बीच अटूट प्रेम सम्बन्ध भी स्थापित किया है। रामायणकालीन ग्रंथों में सजीव–निर्जीव दोनों तत्वों को चेतना सम्पन्न बताया गया है। वाल्मीकि ने रामायण में प्रकृति के मनोरम दृश्यों का वर्णन किया है। ऋषि मुनियों के आश्रम हरियाली युक्त थे जिनमें जीव–जन्तु एवं पशु–पक्षियों का समूह स्वच्छन्द विचरण करते थे। महाभारत काल मे भी मनीषियों ने पर्यावरण की महिमा का गान किया है। भगवान श्रीकृष्ण का बाल्यकाल प्रकृति की गोद में बीता। उन्होंने तो पग–पग पर पर्यावरण संरक्षण के संकेत दिए। हमारे ऋषि मुनियों ने पृथ्वी का आधार ही जल और जंगल को माना है– "वृक्षाद वर्षन्ति पर्जन्यः पर्जन्यादन्न संभवः" अर्थात वृक्ष जल है,जल अन्न है, अन्न जीवन है। जंगल को आनन्ददायक कहते हैं। सम्राट विक्रमादित्य, चन्द्रगुप्त मौर्य, सम्राट अशोक के शासनकाल में भी वन्य जीवों एवं वनों के संरक्षण पर विशेष बल दिया गया।

• महाराजा विक्रमादित्य फैलोशिप •

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ द्वारा स्थापित तथ्यपूर्ण प्रामाणिक शोधकार्य के लिए वर्ष 2022-23 में
भारतीय नागरिकों से उल्लिखित विषयों में से सीनियर और जूनियर फैलोशिप के लिए प्रस्ताव आमंत्रित हैं-

महाराजा विक्रमादित्य सीनियर फैलोशिप प्रत्येक अध्येता राशि रूपये 4,80,000/-

किन्हीं5 विषयों पर सीनियर फैलोशिप प्रदान की जायेगी। अवधि- 1 वर्ष

1. विक्रमादित्य और पुरातत्व
2. विक्रमादित्यकालीन अभिलेखों का विश्लेषणात्मक अध्ययन
3. प्राचीन भारत में लोक प्रशासन
4. विक्रमादित्य की शासन पद्धति के विभिन्न आयाम
5. जैनेत्तर संस्कृत वांग्मय में विक्रमादित्य
6. वृहत्तर भारत में विक्रमादित्य के साहित्यिक साक्ष्य
7. प्राचीन भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान और उनका आधुनिक विज्ञान में योगदान, वैदिक और अगम स्त्रोतों की समीक्षा
8. पुरातत्व और कला संस्कृति में शिवत्व तथा शिवतत्व
9. सूर्य सिद्धांत रहस्य
10. वैदिक समाज में ऊर्जा व्यवस्था और उसके प्रयोग
11. स्वास्थ्य एवं समृद्धि में ज्योतिष विज्ञान के उपयोग
12. पारंपरिक ज्ञान और मानव विज्ञान
13. भारतीय ज्ञान परंपरा का वैश्विक योगदान

महाराजा विक्रमादित्य जूनियर फैलोशिप प्रत्येक अध्येता राशि रूपये 4,32,000/-

किन्हीं 6 विषयों पर जूनियर फैलोशिप प्रदान की जायेगी। अवधि- 1 वर्ष

1. अवंति जनपद में संवत् प्रवर्तक विक्रमादित्य की जनस्तुतियाँ
2. विक्रमादित्ययुगीन आर्थिक स्थिति
3. प्राचीन भारत में (मध्यप्रदेश के विशेष संदर्भ में) युगयुगीन चरित्र
4. प्राचीन भारत में यंत्र विज्ञान
5. जैन परंपरा में विक्रमादित्य
6. प्राचीन भारतीय स्थापत्य कला
7. प्राचीन भारतीय मंदिर स्थापत्य

पात्रता

■ **सीनियर फैलोशिप (न्यूनतम आयु 35 वर्ष, 1 अप्रैल 2022 की स्थिति में)** -

1. दर्शन, इतिहास, सामाजिक विज्ञान, मानविकी विधाओं, साहित्य अथवा कलाओं में से किसी एक विषय में पीएच.डी. अथवा 2. इतिहास, शिक्षा, संस्कृति, दर्शन या भारतीय साहित्य में अपने योगदान के द्वारा प्रतिष्ठित विद्वान अथवा 3. विश्वविद्यालयीन/महाविद्यालयीन प्राध्यापक अथवा राष्ट्रीय/राज्य स्तरीय ख्याति प्राप्त विद्वान या ऐसे लेखक, संपादक, पत्रकार जिनकी ऊपर संदर्भित विषयों पर दो से अधिक पुस्तकें प्रकाशित या चर्चित हो चुकी हैं, पात्र होंगे। 4. फैलोशिप संबंधित क्षेत्र में विशेष उपलब्धि अर्जित करने अथवा विशेषीकृत अनुसंधान का अनुभव रखने वाले आवेदक को प्राथमिकता दी जायेगी।

■ **जूनियर फैलोशिप (अधिकतम आयु 50 वर्ष, 1 अप्रैल 2022 की स्थिति में)** -

1. दर्शन, इतिहास, सामाजिक विज्ञान, मानविकी विधाओं, साहित्य अथवा कलाओं में से किसी एक विषय में पीएच.डी. उपाधिधारी भी आवेदन कर सकते हैं अथवा 2. कोई युवा/उदीयमान स्तरीय लेखक, पत्रकार, जिनके लेख चर्चित हो चुके हों, भी पात्र होंगे। अथवा 3. संबंधित क्षेत्र में विशेष उपलब्धि अर्जित करने अथवा विशेषीकृत अनुसंधान का अनुभव रखने वाले आवेदक को प्राथमिकता दी जायेगी।

आवेदन-पत्र का प्रारूप

1. नाम 2. स्थायी पता 3. जन्म तिथि 4. जन्म स्थान 5. पासपोर्ट आकार के दो फोटोग्राफ 6. भारत में निवास की अवधि 7. रोजगार की स्थिति 8. शोध प्रस्ताव (सीनियर- लगभग 2500-3000 शब्दों में कम्पोज किया हुआ, जूनियर- लगभग 500-1000 शब्दों में कम्पोज किया हुआ) 9. फैलोशिप की अवधि में किये जाने वाले कार्य का शीर्षक एवं विवरण 10. सम्बन्धित क्षेत्र में योगदान एवं अनुभव 11. ऐसे दो सम्मानित विद्वानों के संदर्भ (नाम एवं पता) जिन्हें नामांकित व्यक्ति की योग्यता/कार्य की जानकारी हो।

आवेदन-पत्र भेजने की अंतिम तिथि- 30 अप्रैल 2023

आवेदक को अपना आवेदन 30 अप्रैल 2023 तक निदेशक, महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, 1 उदयन मार्ग, उज्जैन- 456010, दूरभाष- 0734-2521499 अथवा सचिव, महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, रवीन्द्र भवन परिसर, भोपाल- 462003, दूरभाष- 0755-2990794, 2660563, 2660407, 2660361 को आवश्यक रूप से भेजे जायें। अधिक जानकारी एवं फैलोशिप से जुड़े नियम व शर्तों के लिए वेबसाइट पर जायें।

स्वराज संस्थान संचालनालय
महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ
संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन
E-Mail : vikramadityashodhpeeth@gmail.com, **Website** : www.mvspujjain.com, www.swarajsansthan.org

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन के लिए
1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक : श्रीराम तिवारी, समन्वयक : राजेश्वर त्रिवेदी.
आलेख सेवा निःशुल्क वितरण के लिए. फोन: 0734-2521499, 0755-2660407 Email:mvspujjain@gmail.com, vikramadityashodhpeeth@gmail.com